द्वितीयं व्याप्तिलक्षणम्

द्वितीयलक्षणहिन्दीव्याख्याकारः

डॉ॰ हरेराम त्रिपाठी

चिन्तामणिः

साध्यवद्भिन्नसाध्याभाववदवृत्तित्वम्।

माथुरी

साध्यवद्भिन्नो यः साध्याभाववान् तदवृत्तित्वमित्यर्थः। कपि संयोगी एतद्वृक्षत्वादित्याद्यव्याप्यवृत्तिसाध्यकाव्याप्तिवारणाय साध्यवद्भिन्ने'ति साध्याभाववतो विशेषणमिति प्राञ्चः। तदसत्। 'साध्याभाववत्' इत्यस्य व्यर्थतापत्तेः, साध्यवद्भिन्नावृत्तित्वमित्यस्यैव सम्यक्त्वात्।

नव्यास्तु– साध्यवद्भिन्ने साध्याभावः साध्यवद्भिन्नसाध्याभावस्तद्वदवृत्तित्वमिति सप्तमीतत्पुरुषोत्तरं मतुप्प्रत्ययः। तथा च साध्यवद्भिन्नवृत्तिर्यः साध्याभावस्तद्वदवृत्तित्वमित्यर्थः। एवञ्च साध्यवद्भिन्नवृत्तीत्यनुक्तौ संयोगी द्रव्यत्वादित्यादावव्याप्तिः। संयोगाभाववति द्रव्ये द्रव्यत्वस्य वृत्तेः, तदुपादाने च संयोगवद्भिन्नवृत्तिः संयोगाभावो गुणादिवृत्तिः संयोगाभाव एव, अधिकरणभेदेनाभावभेदात्, तद्वदवृत्तित्वान्नाव्याप्तिः।

यथार्थ अनुभव को प्रमा कहते है। प्रमा के करण को प्रमाण शब्द से लोक में व्यवहार किया जाता है। चार प्रमाणों में अनुमान प्रमाण की महत्ता शास्त्र विहित है। अनुमान प्रमाण के दो मुख्य अङ्ग होते हैं, व्याप्ति एवं पक्षधर्मता। नव्य नैयायिकों ने तो व्याप्तिज्ञान को ही अनुमिति

प्रमा का करण स्वीकार किया है। इसलिए व्याप्तिज्ञान का विषय व्याप्ति क्या है इस प्रकार की जिज्ञासा होती है। तत्त्वचिन्तामणिकार व्याप्तिपञ्चकग्रन्थ के प्रारम्भ में ही कहते हैं "नन्वनुमितिहेतुव्याप्तिज्ञाने का व्याप्तिः" अर्थात् अनुमिति का कारणीभूत जो व्याप्तिज्ञान उसका विषयीभूता व्याप्ति क्या है। इसके अनन्तर "न तावद् अव्यभिचरितत्वम्" ग्रन्थ से पूर्वपक्षीय अव्यभिचरितत्व को व्याप्ति स्वीकार करके पुनः "केवलान्वयिन्यभावात्" ग्रन्थ से उसका खण्डन किया है। अव्यभिचरितत्व का पाँच अर्थ तत्त्वचिन्तामणिकार ने किया है। प्रथम अर्थ है "साध्याभाववदवृत्तित्वम्" अर्थात् साध्याभावाधिकरण निरूपित वृत्तित्व का अभाव ही व्याप्ति है। "पर्वतः वह्निमान् धूमात्" यहाँ पर पर्वत पक्ष है वह्नि साध्य तथा धूम हेतु है। साध्य वह्नि के अभाव का जो अधिकरण जल उसमें वृत्ति मीन आदि है अवृत्ति धूम है अर्थात् जल निरूपित वृत्तित्व का अभाव धूम में होने से उक्त लक्षण का समन्वय होता है।

साध्याभावाधिकरण निरूपित वृत्तित्वाभाव रूप जो व्याप्ति इस लक्षण में अव्याप्यवृत्तिसाध्यक सद्धेतु "कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वात्" यहाँ पर एतद्वृक्षत्व हेतु में अव्याप्ति दोष हो जायेगा। अतः तत्त्वचिन्तामणिकार ने प्रथम लक्षण का परित्याग करके द्वितीय लक्षण का निरूपण किया। "साध्यवद्भिन्न साध्याभाववदवृत्तित्वम्।"

मथुरानाथतर्कवागीश ने "लक्षणान्तरमाह" ग्रन्थ से द्वितीय लक्षण का प्रतिपादन किया है। उक्त ग्रन्थ का अर्थ है कि कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वात् स्थल में सद्धेतु जो एतद्वृक्षत्व उसमें प्रथम लक्षण का समन्वय न होने के कारण अव्याप्ति दोष होने लगेगा। उसके निवारण के लिए दूसरे लक्षण को तत्त्वचिन्तामणिकार ने कहा है।

साध्याधिकरण भेद का अधिकरण स्वरूप जो साध्याभाव के अधिकरणता का आश्रय तन्निरूपित वृत्तित्व का अभाव ही अव्यभिचरितत्व स्वरूप व्याप्ति है। पर्वतपक्षक वह्निसाध्यक धूमहेतुक सद्धेतु में लक्षण समन्वय हो जायेगा। क्योंकि वह्निमद् भेद का अधिकरण जल होगा वह वह्न्यभाव का भी अधिकरण है तन्निरूपित वृत्तिता मछली आदि में है वृत्तित्व का अभाव धूम में है। "धूमवान् वह्नेः" इस स्थल में वह्नि हेतु

असद्धेतु है उसमें लक्षण न जाने के कारण उक्त लक्षण में अतिव्याप्ति दोष भी नहीं होगा। क्योंकि धूमवद् भिन्न अयोगोलक जो धूमाभाव के अधिकरणता का आश्रय भी है, उसमें वह्नि के वृत्ति (से) होने से उक्त दोष नहीं होगा।

द्वितीय लक्षण के निरूपण का प्रयोजन को बतलाते हुए मथुरा नाथ तर्क वागीश जी कहते हैं कि "साध्यावद्भिन्न जो साध्याभाववान् तन्निरूपित वृत्तित्वाभाव" अर्थात् साध्यवद्भिन्न जो साध्याभाव का अधिकरण तन्निरूपित वृत्तित्व का अभाव ही व्याप्ति है। "कपि संयोगी एतद् वृक्षत्वात्" इस अव्याप्य वृत्ति साध्यक सद्धेतु में अव्याप्ति दोष निराकरण के लिए साध्यवद्भिन्नपद साध्याभाववान् में विशेषण है ऐसा प्राचीन नैयायिकों का मत है। साध्यवद् भिन्न पद का निवेश यदि लक्षण में नहीं करते हैं तो कपिसंयोग साध्यक एतद्वृक्षत्व हेतुक स्थल में मूलावच्छेदेन (अर्थात् एतद् वृक्ष के मूल में कपिसंयोग का अभाव मिल जायेगा) कपि संयोग के अभाव का अधिकरण एतद्वृक्ष हो जायेगा तन्निरूपित वृत्तिता के एतद्वृक्षत्व में उपलब्ध होने के कारण अव्याप्ति दोष का वारण असम्भव है। साध्यवद् भिन्नत्व का निवेश विशेषण विधया साध्याभाववान् में करके साध्यवद्भिन्न जो साध्याभाववान् तन्निरूपितवृत्तित्वाभाव स्वरूप व्याप्ति का लक्षण करने पर उक्त स्थल में अव्याप्ति नहीं होगी। क्योंकि भेद के व्याप्यवृत्ति होने के कारण कपिसंयोगवद् भिन्न एतद्वृक्ष नहीं होगा अपि तु गुण ही होगा। एवञ्च कपिसंयोगवद्भेद रूप जो कपि संयोगाभाव का अधिकरण गुण तादृश गुण में एतद्वृक्षत्व के न रहने के कारण अव्याप्ति नही होगी।

माथुरी- ग्रन्थ के टीकाकार श्यामसुन्दर झा ने उक्त लक्षण की अव्याप्ति पर्वतपक्षक वह्निसाध्यक धूमहेतुकस्थल में दर्शाया है। क्योंकि साध्यवद्भिन्न अर्थात् वह्निमद् भिन्न जो वह्न्यभाव का अधिकरण ह्रद तन्निरूपित कालिकसम्बन्धेन वृत्तिता ही धूम हेतु में है। अतः हेतुतावच्छेदक सम्बन्धावच्छिन्नत्व का वृत्तिता में विशेषण देना आवश्यक है। एवञ्च द्वितीय लक्षण का आकार होगा। साध्यवद्भेद के अधिकरण से अभिन्न जो साध्याभावाधिकरणताश्रय तन्निरूपित हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न वृत्तित्वाभाववत्त्व ही अव्यभिचरितत्वस्वरूप व्याप्ति है। "साध्यवद् भिन्नो

यः साध्याभाववान् तदवृत्तित्वम्" यह कर्मधारय समास घटित व्याप्ति का स्वरूप है। इस लक्षण में साध्यवद्भिन्नत्व साध्याभावाधिकरण में विशेषण है ऐसा प्राचीन नैयायिकों का मत है। "तदसत्" ग्रन्थ से मथुरानाथतर्क वागीश महोदय प्राचीन नैयायिकों के मत का खण्डन करते हैं। अर्थात् प्राचीनों का मत ठीक नहीं है। प्राचीन के मत को स्वीकार करने पर साध्याभाववत् पद की व्यर्थता होने लगेगी, क्योंकि साध्यवद्भिन्नावृत्तित्व ही लक्षण अव्याप्यवृत्ति साध्यक सद्धेतु में अव्याप्तिवारण करने के लिए पर्याप्त है। वैयर्थ्य का तात्पर्य है स्वसमानाधिकरण प्रकृतसाध्यव्यापतावच्छेदक लघुभूत दूसरे धर्म से घटित होना। जैसे "वह्निमान् नीलधूमात्" यहाँ नीलधूमत्व व्यर्थविशेषण से घटित होने के कारण व्यर्थ हैं। इसी तरह प्रकृत ग्रन्थ में साध्यवद्भिन्न साध्याभाववद् अवृत्तित्व तथा साध्यवद्भिन्नावृत्तित्व के अभिन्न होने से स्वपदग्राह्य साध्यवद्भिन्न साध्याभाववद् अवृत्तित्व समानाधिकरण प्रकृत साध्यव्याप्यतावच्छेदकलघुभूतधर्मान्तरसाध्यवद्भिन्ना-वृत्तित्व से घटित उक्त लक्षण है अतः साध्याभाववत् पद की व्यर्थता हो जायेगी।

श्रद्धेय वामाचरणभट्टाचार्य महोदय जी कहते हैं कि लक्षण वही हो सकता है जो इतरभेद का अनुमापक स्वसमानाधिकरण प्रकृत साध्य व्याप्यतावच्छेक धर्मान्तर से अघटित धर्माश्रयीभूत हो। स्व समानाधिकरण प्रकृतसाध्यव्याप्यतावच्छेदकधर्मान्तर से घटित धर्म के गुरु होने के कारण तादृश धर्म में व्याप्यतावच्छेदकत्व नहीं स्वीकार किया जाता है। अतः प्रकृत में व्याप्ति के इतरभेदानुमापक साध्यवद् भिन्न साध्याभावा-धिकरणवृत्तित्वाभाव रूप लक्षणात्मक धर्म नहीं हो सकता है। तादृश वृत्तित्वाभावत्व रूप स्वसमानाधिकरणीभूत जो प्रकृत साध्यीभूतव्याप्ति से इतरभेदव्याप्यतावच्छेदक धर्मान्तर साध्यवद् भिन्न वृत्तित्वाभावत्व उससे घटित जो साध्यवद्भिन्न साध्याभाववद्वृत्तित्वाभावत्व की आश्रयता का तादृश धर्म में रहने के कारण साध्याभाववत् पद की व्यर्थता हो जायेगी। क्योंकि इतरभेदव्यभिचार का वारक जो विशेषण नहीं होता है तादृश विशेषण से घटित समुदाय की ही व्यर्थता होने लगती है।

दीधितिकार के द्वारा अभिप्रेत द्वितीय लक्षणार्थ को प्रदर्शित करके समाधान देते हैं मथुरानाथतर्कवागीश "नव्यास्तु" इस ग्रन्थ से,

अर्थात् नव्यों के मत में कर्मधारय समास न करके सप्तमी तत्पुरुष के बाद मतुप् प्रत्यय किया जाता है। "साध्यवद् भिन्ने साध्याभावः साध्यवद्भिन्नसाध्याभावः तद्वद् अवृत्तित्वम्" यहाँ पर सप्तमी तत्पुरुष समास के बाद मतुप् प्रत्यय विवक्षित है। "साध्यवद् भिन्ने" यहाँ पर सप्तमी विभक्ति का अर्थ है वृत्तित्व तथाच साध्यवद् भिन्नवृत्ति जो साध्याभाव तदधिकरण निरूपित वृत्तित्व का अभाव ही व्याप्ति का स्वरूप होगा।

साध्यवद् भिन्न वृत्ति पद का निवेश लक्षण में न किया जाय तो "संयोगी द्रव्यत्वाद्" अर्थात् संयोगसाध्यक द्रव्यत्वहेतुक स्थल के द्रव्यत्वसद्धेतु में अव्याप्ति हो जायेगी। क्योंकि संयोग अव्याप्य वृत्ति है, इसलिए द्रव्य के किञ्चिद् देश में संयोग है किञ्चिद् देश में संयोगाभाव भी रहता है, अतः संयोगाभाव का अधिकरण जो द्रव्य उसमें द्रव्यत्व हेतु के रहने से अव्याप्ति हो जायेगी। साध्याभाव पद का व्याप्ति लक्षण में निवेश कर देने पर संयोगवद्भिन्न वृत्ति जो संयोगाभाव वह द्रव्य में नहीं रहता है अपितु गुणवृत्ति है, एवञ्च संयोगवद्भिन्न वृत्ति साध्याभाव का अधिकरण गुण आदि होंगे, अधिकरण के भेद से अभाव का भेद होता है इसी मत में उक्त व्याख्या की गयी है। तादृश गुण निरुपित वृत्तिता गुणत्व में, वृत्तित्वाभाव द्रव्यत्व में होने के कारण अव्याप्ति नहीं होगी।

"साध्यवद्भिन्ने यः साध्याभावः" यहाँ पर सप्तमी तत्पुरुष किया गया है इसके बाद मत्त्वर्थीय मतुप् प्रत्यय जो किया जाता है वह नहीं हो सकता है क्योंकि नियम है कि "न कर्मधारयान् मत्वर्थीयो बहुव्रीहिश्चेत्तदर्थप्रतिपत्तिकरः" अर्थात् कर्मधारय से मत्वर्थीय प्रत्यय करने पर जो अर्थ लब्ध होता है वही अर्थ बहुव्रीहि समास से प्राप्त होता है तो बहुव्रीहि समास ही करना चाहिए यहाँ पर कर्मधारय पद की बहुव्रीहीतर समास में लक्षणा की जाती है। अतः सप्तमी तत्पुरुष समास के अनन्तर मत्वर्थीय प्रत्यय करने पर उक्त अनुशासन का विरोध होगा अतः पूर्वोक्त समाधान ठीक नहीं है। ऐसा नहीं कह सकते। "साध्यरूपाभावो यस्य असौ साध्याभावः स अस्य अस्ति इति साध्याभाववान् साध्यवद्भिन्ने साध्याभाववान् साध्यवद्भिन्नसाध्याभाववान् अर्थात् साध्य स्वरूप अभाव है जिसके वह साध्याभाव है जिस अधिकरण के वह साध्याभाववान् है,

साध्यवद्भिन्न में वृत्ति जो साध्याभाव तद्वान् साध्यवद् भिन्नवृत्ति साध्याभाववद् होगा इस प्रकार के विग्रह को स्वीकार करने पर बहुव्रीहि समास के बाद मतुप् प्रत्यय करने पर कोई बाधक नहीं होगा।

यहाँ पर शंका करते हैं कि साध्यवद्भिन्ने शब्द का अर्थ साध्यवद्भिन्नवृत्तित्व या साध्यवद्भिन्नवृत्तित्वसम्बन्धी होने से तादृश वृत्तित्व का साध्याभाववान् पदार्थ के एक देश साध्याभाव के साथ अन्वय होने से "पदार्थः पदार्थेनान्वेति न तु पदार्थैकदेशेन "इस व्युत्पत्ति का विरोध होगा, ऐसा भी आप नहीं कह सकते क्योंकि व्युत्पत्तिवाद ग्रन्थ में दर्शाया गया है कि "वेदाः प्रमाणम्" यहाँ पर प्रमाणपदोत्तर सुबर्थ एकत्व का प्रमाण का एकदेश प्रमाणत्व के साथ अन्वय होता है। अतः पूर्वोक्त नियम का संकोच किया जा सकता है। "साध्यवद्भिन्ने" पद का जो अर्थ होता है साध्यवद्भिन्नवृत्तित्व उसका स्वाश्रयाश्रयत्व सम्बन्ध से साध्याभाववान् में अन्वय करने पर कोई दोष नहीं होगा।

श्रद्धेय वामाचरण भट्टाचार्य जी केचित्तु के मत को प्रदर्शित करते हुए कहते हैं कि साध्यवद्भिन्ने साध्याभावो यत्र" इस व्यधिकरण बहुव्रीहि समास के साधु न होने के कारण स्वीकार नहीं किया जा सकता। अतः बहुव्रीहि समास से साध्यवद्भिन्न वृत्ति साध्याभावाधिकरण रूप अर्थ का ज्ञान सम्भव नहीं है इसलिए सप्तमी तत्पुरुष समास के कर्मधारय समास के तुल्य होने पर सप्तमी तत्पुरुष समास के बाद मतुप् प्रत्यय किया गया है। बहुव्रीहि समास से प्रतिपाद्य अर्थ का बोधक होने से कर्मधारय के बाद मतुप् प्रत्यय सम्भव नहीं है ऐसा केचित्तु का मत है। यह चिन्तनीय है।

माथुरी

न च तथापि साध्यवद्भिन्नावृत्तित्वमित्येवास्तु लक्षणं किं साध्याभाववदित्यनेनेति वाच्यम्। यथोक्तलक्षणे तस्याप्रवेशेन वैयर्थ्याभावात्। तस्यापि लक्षणान्तरत्वात्। न च तथापि साध्यवद्भिन्नवृत्तिर्यः तद्वदवृत्तित्वमेवास्तु किं साध्या-भावपदेनेति वाच्यम्, तादृशद्रव्यत्वादिमद् वृत्तित्वादसम्भ-

वापत्तेः। साध्याभावेत्यत्र साध्यपदमप्यत एव, द्रव्यत्वादेरपि द्रव्यत्वाभावाभावत्वात् भावरूपाभावस्य चाधिकरणभेदेन भेदाभावात्। ननु तथापि घटाकाशसंयोग- घटत्वान्यतराभाववान् गगनत्वादित्यादौ घटानधिकरणदेशावच्छेदेन घटाकाशसंयोगा-भावस्य गगने सत्त्वात् सद्धेतुतयाऽव्याप्तिः, साध्यवद्भिन्ने घटे वर्तमानस्य साध्याभावस्य घटाकाशसंयोगरूपस्य गगनेऽपि सत्त्वात् तत्र च हेतोर्वृत्तेः। न च साध्यवद्भिन्नवृत्तित्वविशिष्ट-साध्याभाववत्त्वं विवक्षितमिति वाच्यम्। साध्याभावपदवैयर्थ्या-पत्तेः।

नव्य के मत में अभिप्रेत साध्यवद्भिन्नवृत्ति साध्याभावाधिकरण निरूपित वृत्तित्वाभाव स्वरूप व्याप्ति के लक्षण की अपेक्षा लक्षणान्तर लघु लक्षण "साध्यवद्भिन्नावृत्तित्व" को ही स्वीकार कर लिया जाय। एक ही लघु लक्षण से इष्ट की सिद्धि यदि हो जाय तो बृहद् दूसरे लक्षण साध्याभाव घटित करने की क्या आवश्यकता है। अर्थात् शंका करने वाले का आशय है कि "साध्यवद्भिन्नावृत्तित्व" रूप लघु लक्षण ही ठीक है तो साध्याभाववद् घटित लक्षण की व्यर्थता हो जायेगी। एवञ्च "साध्यवद्भिन्नावृत्तित्व" स्वरूप व्याप्ति के लक्षण में "साध्याभाववद्" पद का निवेश न करने पर कोई दोष नहीं होगा तथा लक्षण में व्यर्थता रूपी दोष भी नहीं होगा। "साध्यवद्भिन्नावृत्तित्व" भी लक्षणान्तर ही है अतः इसी लक्षण को स्वीकार कर लिया जाय।

"तस्यापि लक्षणान्तरत्वात्" ग्रन्थ की व्याख्या करते हुए वामाचरण भट्टाचार्य जी कहते हैं कि कोई यह शंका करता है कि नव्य के मत में साध्याभाववद् घटित लक्षण निर्दुष्ट है तो उसको छोड़कर लक्षणान्तर का अनुसरण करना उचित नहीं है। यदि उचित है भी तो अन्य लक्षण से अन्य निर्दुष्ट लक्षण का अन्यथाकरण नहीं किया जा सकता है। "साध्यवद्भिन्नावृत्तित्व" लक्षणान्तर भी समीचीन ही है। इससे यह प्रतीत होता है कि नव्यों के मत में किया गया लक्षण भी समीचीन ही है।

पुनः यहाँ शंका उपस्थित करते हैं कि नव्यों के मत में स्वीकृत

लक्षण के स्थान पर साध्यवद्भिन्नवृत्तिर्यः तदधिकरण निरूपित वृत्तित्वाभाव कहा जाय साध्याभाव पद देने का प्रयोजन लक्षण में क्या है, अर्थात् कोई प्रयोजन नहीं है। ऐसा भी नहीं कह सकते। साध्यवद्भिन्न में वृत्ति जो तदधिकरण निरूपित वृत्तित्वाभाव लक्षण करने पर पर्वतपक्षक वह्निसाध्यक धूमहेतुक सद्धेतु स्थल में वह्निमद्भिन्न जल ह्रदादि में वृत्ति द्रव्यत्व उसका अधिकरण जो पर्वत उसमें धूम के रहने से असम्भव दोष हो जायेगा। सद्धेतु मात्र में लक्षण का समन्वय न होने के कारण असम्भव दोष कहा गया है। "साध्यवद् भिन्न वृत्ति जो" यहाँ पर साध्याभाववृत्ति साध्यसामान्यीय प्रतियोगितावच्छेदक सम्बन्ध से साध्यवद् भिन्न वृत्तित्व का निवेश कर देने पर तादृश सम्बन्ध से द्रव्यत्व की वृत्तिता ही अप्रसिद्ध हो जायेगी। अतः द्रव्यत्व को लेकर तादृश सद्धेतु स्थल में असम्भव नहीं होगा। इसलिए माथुरी ग्रन्थ में "द्रव्यत्वादिमद्" यहाँ पर आदि पद दिया गया है। आदि पद से प्रमेयत्व, वाच्यत्व आदि को समझना चाहिए। प्रमेयत्व या वाच्यत्व का साध्याभाववृत्तिसाध्यसामान्यीय प्रतियोगितावच्छेदक सम्बन्ध स्वरूप सम्बन्ध से पदार्थ मात्र में वृत्ति होने से असम्भव दोष होने लगेगा।

उक्त असम्भव दोष को वारित करने के लिए साध्याभावपद देना आवश्यक है। यहाँ पर पुनः विचार किया जाता है कि साध्यपद देने की आवश्यकता ही नहीं है। अपि तु साध्यवद्भिन्न वृत्ति जो अभाव तदधिकरण निरूपित वृत्तित्वाभाव ही लक्षण करना श्रेयस्कर है। उक्त व्याप्ति का लक्षण करने से द्रव्यत्वादि भाव पदार्थ को लेकर "वह्निमान् धूमात्" यहाँ पर असम्भव दोष नहीं होगा। अतः साध्याभाव में घटकी भूत साध्यपद व्यर्थ है। ऐसा भी कहना ठीक नहीं है, क्योंकि साध्य पद न देने पर वह्निमद्भिन्न जलादिवृत्यभाव से द्रव्यत्वाभावाभाव का ग्रहण करेंगे, द्रव्यत्वाभावाभाव द्रव्यत्व स्वरूप है उसका अधिकरण पर्वत होगा तन्निरूपित वृत्तिता ही धूम में है अतः असम्भव पूर्ववत् ही हो जायेगा। यदि लक्षण में साध्यपद का निवेश करते हैं तो अभावरूप जो द्रव्यत्व वह वह्न्यभाव रूप नहीं है अतः साध्यपद के लक्षण में निवेश करने पर असम्भव दोष नहीं होगा।

पुनः शंका यहाँ पर उपस्थापित करते हैं कि लक्षण में साध्य पद के न देने पर भी वह्निमद्भिन्न जल ह्रदादिवृत्यभाव से द्रव्यत्वाभावाभाव

को भी लिया जाय तो असम्भव नहीं होगा क्योंकि अभाव के भेद से अधिकरण का भेद होता है। अत: जल में रहने वाला द्रव्यत्वाभावाभाव अर्थात् द्रव्यत्व उसका अधिकरण जल ही होगा पर्वत नहीं होगा। इसलिए असम्भव दोष न होने से साध्यपद व्यर्थ है। पुन: साध्य की सार्थकता को दर्शित करते हुए मथुरानाथ तर्क वागीश जी कहते हैं कि भाव रूप जो अभाव होता है वह अधिकरण के भेद से भिन्न नहीं होता हैं। अत: द्रव्यत्वाभावाभावस्वरूप जो द्रव्यत्व उसका अधिकरण जैसे जल है वैसे ही पर्वत भी तन्निरूपित वृत्तिता के धूम में रहने से असम्भव दोष पुन: होने लगेगा। अत: असम्भव दोष के निवारण हेतु साध्य पद का लक्षण में निवेश करना आवश्यक है। साध्यपद के लक्षण में निवेश करने पर साध्याभाव पद से द्रव्यत्वाभाव को न लेकर वह्न्यभाव को लिया जायेगा। उसका अधिकरण जल ही होता है पर्वत नहीं। अत: जल में वृत्ति मीन वृत्तित्वाभाव के धूम में रहने से सभी जगह लक्षण समन्वय हो जायेगा।

लक्षण घटक साध्यवद्भिन्नत्व पद का अर्थ साध्यतावच्छेदक सम्बन्धावच्छिन साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नावच्छेदकताकप्रतियोगिताक भेदवत्त्व करना चाहिए "संयोगी द्रव्यत्वात्" इस स्थल में कालिक सम्बन्ध से संयोग काल में रहेगा उसके अभाव का अधिकरण गगनादि (नित्य द्रव्य) होंगे। अथवा समवाय सम्बन्ध से वृक्षादिवृत्तित्वविशिष्ट संयोगवद् भिन्न गगनादि जो संयोगाभाव का अधिकरण है उसमें द्रव्यत्व हेतु के रहने पर भी अव्याप्ति नहीं होगी।

साध्यतावच्छेदक सम्बन्धावच्छिन्न साध्यतावच्छेदकावच्छिन्ना-वच्छेदकताकभेदवत्त्व यदि स्वरूप सम्बन्ध से कहा जाय तो "घटत्वाभाववान् पटत्वात्" इस स्थल में अव्याप्ति हो जायेगी। क्योंकि साध्यवद्भेद अर्थात् घटत्वाभाववद्भेद स्वरूप जो घटत्व उसका स्वरूप सम्बन्ध से अधिकरण ही अप्रसिद्ध है। सम्बन्ध सामान्य से तादृश भेदवत्त्व को यदि कहा जाय तो "संयोगी द्रव्यत्वात्" इस स्थल में अव्याप्ति दुष्परिहर हो जायेगी। क्योंकि संयोगवद्भेद का कालिकेन जो अधिकरण महाकाल उसमें विद्यमान जो संयोगाभावाधिकरण महाकाल में द्रव्यत्व। अत: साध्याभावाधिकरण महाकाल में द्रव्यत्व हेतु के रहने से अव्याप्ति हो जायेगी। तादृश भेदवत्त्व या तादृशभेदवद् वृत्तित्व एवं साध्याभावाधिकरण

को एक ही साध्याभाववृत्ति साध्यसामान्यीय प्रतियोगितावच्छेदक सम्बन्ध से समझना चाहिए। अतः उक्त स्थल में समन्वय हो जायेगा कहीं पर दोष नहीं होगा। सम्बन्ध सामान्य से साध्यवद् भिन्नवत्त्व का निवेश करने पर "द्रव्यत्वाभाववान् गुणत्वात्" इस सद्धेतु स्थल में द्रव्यत्वाभाववद्भिन्न जन्य द्रव्यादि में कालिक सम्बन्ध से द्रव्यत्वाभावाभाव स्वरूप जो द्रव्यत्व उसका कालिक सम्बन्ध से अधिकरण जन्यगुण उसमें गुणत्व हेतु के रहने से अव्याप्ति हो जायेगी। अतः पूर्वोक्त साध्याभाववृत्ति साध्यसामान्यीय प्रतियोगितावच्छेदक सम्बन्ध में साध्यवद्भेदवत्त्व का निवेश करना आवश्यक है। तादृश भेदवत्त्व का अर्थ साध्यवद्भेदत्वावच्छिन्न आधेयता निरूपित अधिकरणता करना चाहिए। उक्त तादृशभेदवत्त्व का अर्थ करने पर "संयोगी द्रव्यत्वात्" यहाँ पर संयोगवद्भेद द्रव्यत्वान्यतरत्वावच्छिन्न आधेयता निरूपित अधिकरणताश्रय द्रव्य में, जो कि संयोगाभाव का अधिकरण भी है उसमें द्रव्यत्व के वृत्ति होने पर भी अव्याप्ति नहीं होगी।

लक्षण घटक साध्याभाववत्त्व का अर्थ साध्यतावच्छेदक-सम्बन्धावच्छिन्न साध्यतावच्छेदकावच्छिन्न प्रतियोगिताक साध्याभाव-त्वावच्छिन्न आधेयता निरूपक अधिकरणता करना चाहिए। उक्त निर्वचन करने पर समवाय सम्बन्ध से द्रव्यत्वाभाव को कालिकसम्बन्ध से साध्य करने पर महाकालत्व को हेतु बनाने पर साध्यवद्भिन्न गगनादि में वर्तमान द्रव्यत्वाभाव का स्वरूपसम्बन्ध से अभाव तादृश अभाव द्रव्यत्व के अधिकरण महाकाल में महाकालत्व के वृत्ति होने पर अव्याप्ति नहीं होगी।

साध्याभावत्वावच्छिन्नत्वेन आधेयता का प्रवेश करने पर विशिष्टसत्ताभावसाध्यक गुणत्वहेतुक स्थल में विशिष्टसत्ताभाववद् भिन्नद्रव्य में वर्तमान सत्तास्वरूप साध्याभाव का अधिकरण गुण के होने पर भी अव्याप्ति नहीं होगी।

साध्यवद्भिन्न वृत्ति साध्याभावाधिकरण निरूपित वृत्तित्वाभाव को व्याप्ति का लक्षण करने पर भी घटाकाशसंयोग-घटत्वान्यतराभावसाध्यक गगनत्व हेतुक स्थल में घटानधिकरणदेशावच्छेदेन अर्थात् जहाँ घट नहीं है तद्देशावच्छेदेन घटाकाशसंयोगाभाव का अधिकरण गगन के होने से

गगनत्व हेतु सद्धेतु है। यहाँ अव्याप्ति हो जायेगी अथवा घटानधिकरणदेशावच्छेदेन घटत्व का, या घटाकाशसंयोग का अभाव गगन में है वही पर गगनत्व हेतु भी है। भाव रूप जो अभाव वह अधिकरण के भेद से भिन्न होता है इस मत को न स्वीकार करते हुए यानी भाव रूप अभाव अधिकरण के भेद से भिन्न नहीं होता है इस मत को स्वीकार करके साध्य पद की सार्थकता को सिद्ध करने पर भी घटाकाशसंयोग-घटत्वान्यतराभाव साध्यक गगनत्व हेतुक स्थल में घटाकाशसंयोग-घटत्वान्यतराभावाभाव तादृश अन्यतर स्वरूप है अतः साध्याभाव जैसे घट में है वैसे गगन में भी है एवञ्च घटाकाशसंयोग-घटत्वान्यतराभाववद्भेद का अधिकरण जो घट उसमें वर्तमान घटाकाश-संयोगरूप साध्याभाव उसका अधिकरण आकाश भी हो जायेगा तन्निरूपित वृत्तिता गगनत्व हेतु में होने से अव्याप्ति दोष हो जायेगा।

यदि साध्यवद्भिन्नवृत्तित्वविशिष्ट जो साध्याभाव तदधिकरण निरूपित वृत्तित्वाभाव को व्याप्ति का स्वरूप स्वीकार कर लिया जाय तो उक्त अव्याप्ति नहीं होगी। क्योंकि घटाकाशसंयोग-घटत्वान्यतराभाववद्-भिन्नघटवृत्तित्वविशिष्टघटाकाशसंयोग-घटत्वान्यतराभावाभाव घटाकाशसंयोग स्वरूप साध्याभाव का अधिकरण घट ही होगा गगन नहीं होगा क्योंकि विशिष्टाधिकरणता विलक्षण होती है। तादृश घट में घटत्व है गगनत्व हेतु के न रहने से अव्याप्ति नहीं होगी विशिष्ट अधिकरणता के विलक्षण होने पर "वह्निमान् धूमात्" इस स्थल में वह्निमद्भिन्न जल ह्रदादि वृत्तित्वविशिष्ट द्रव्यत्व का अधिकरण जल ही होगा पर्वत नहीं, तन्निरूपित वृत्तित्व का अभाव धूम में होने से असम्भव दोष नहीं होगा।

अतः असम्भव दोष वारण के लिए साध्याभाव पद का निवेश लक्षण में करना व्यर्थ है।

माथुरी

साध्यवद्भिन्नवृत्तित्वविशिष्टवदवृत्तित्वस्यैव सम्यक्-त्वादिति चेन्न। अभावाभावस्यातिरिक्तत्वमतेनैतल्लक्षणकरणात्। तथाच चाधिकरणभेदेनाभावभेदात्साध्यवद्भिन्ने घटे वर्तमानस्य

साध्याभावस्य प्रतियोगि व्यधिकरणस्य प्रतियोगिमति गगनेऽसत्त्वादव्याप्तेरभावात्। न चैवं साध्याभावेत्यत्र साध्यपदवैयर्थ्यम्, अभावाभावस्यातिरिक्तत्वेन द्रव्यत्वादेरभावत्वाभावात् साध्यवद्भिन्नवृत्तिघटाभावादेस्तु हेतुमत्यसत्त्वादधिकरणभेदेनाभावभेदादिति वाच्यम्। यत्र प्रतियोगिसमानाधिकरणत्वप्रतियोगिव्यधिकरणत्वलक्षणविरुद्धधर्माध्यासस्तत्रैवाधि' करणभेदेनाऽभावभेदाभ्युपगमो न तु सर्वत्र, तथाच साध्यवद्भिन्नवृत्तिघटाभावादेर्हेतुमत्यपि सत्त्वादसम्भववारणाय साध्यपदोपादानात्।

असम्भव दोष के वारित हो जाने पर साध्याभाव पद का निवेश व्यर्थ है इसका प्रतिपादन पूर्व में किया गया है। साध्याभाव पद की व्यर्थता होने के कारण साध्यवद् भिन्नवृत्तित्व विशिष्टवद् अवृत्तित्व ही व्याप्ति का स्वरूप होगा। ऐसा ही निर्वचन करना ठीक है। ऐसा भी नहीं कह सकते हैं। तत्तद् अभाव का जो अभाव होता है वह भाव स्वरूप न होकर सप्तम अभाव स्वरूप होता है यानी भाव से अतिरिक्त होता है इसी मत को स्वीकार करते हुए द्वितीय लक्षण किया गया है। इसलिए अधिकरण के भेद से अभाव का भेद स्वीकार करने पर घटाकाशसंयोग-घटत्वान्यतराभाव स्वरूप जो साध्य तदधिकरण गगनभेदाधिकरण घट में विद्यमान जो तादृशान्यतराभावाभाव स्वरूप साध्याभावप्रतियोगिव्यधिकरण हो जायेगा। प्रतियोगिव्यधिकरण गगन नहीं होगा तन्निरूपित वृत्तिता घटत्व में, वृत्तित्वाभाव गगनत्व हेतु में होने के कारण अव्याप्ति नहीं होगी। इसी तरह पर्वत पक्षक वह्निसाध्यक धूमहेतुक स्थल में वह्निमद्भिन्न जल में विद्यमान जो वह्न्यभाव तदधिकरण जल ही होगा पर्वत नहीं। तन्निरूपित वृत्तित्वाभाव के धूम में रहने से असम्भव दोष भी नहीं होगा। अतः असम्भव दोष के वारण हेतु साध्याभाव यहाँ पर साध्य का निवेश करना व्यर्थ हो जायेगा। अभाव का अभाव (भाव स्वरूप) प्रतियोगी स्वरूप नहीं होता है। अपितु अभाव स्वरूप (सप्तम अभाव स्वरूप) होता है इस मत में वह्नि साध्यक धूम हेतुक स्थल में वह्निमद् भिन्न जलादिवृत्त्यभाव

पद से द्रव्यत्व का ग्रहण नहीं किया जा सकता है। अपितु वह्निमद्भिन्नवृत्ति घटाभाव का ग्रहण किया जा सकता है तादृश घटाभाव का अधिकरण जल ही होगा धूमाधिकरण पर्वत नहीं होगा। क्योंकि अधिकरण के भेद से अभाव का भेद होता है अतः जो घटाभाव जल में है वह पर्वतनिष्ठ घटाभाव से भिन्न है। इसलिए जल में रहने वाला घटाभाव का अधिकरण जल ही होगा तन्निरूपित वृत्तित्वाभाव के धूम में रहने से असम्भव दोष का निराकरण हो जायेगा। अतः साध्यपद का उपादान व्यर्थ है। ऐसा भी कहना समीचीन नहीं प्रतीत होता है। क्योंकि जहाँ पर प्रतियोगि-समानाधिकरणत्व-प्रतियोगी व्यधिकरणत्व स्वरूप दो परस्पर विरुद्ध धर्मों का अध्यास होता है वहीं पर अधिकरण के भेद से अभाव का भेद स्वीकार किया जाता है। सभी जगह अधिकरण के भेद से अभाव का भेद नहीं स्वीकार किया जाता है।

"तथाच" ग्रन्थ से साध्य पद की सार्थकता दिखाते हुए मथुरानाथतर्क वागीश जी कहते हैं कि सभी जगह अभाव में अधिकरण के भेद से अभाव का भेद न स्वीकार करने पर वह्निसाध्यक धूमहेतुक स्थल में वह्निमद् भिन्न जलादि वृत्ति वह्न्यभावाधिकरण में विद्यमान घटाभाव आदि का अधिकरण जैसे जलादि है वैसे धूमवत् पर्वत भी हो जायेगा। तन्निरूपित वृत्तिता ही धूम हेतु में उपलब्ध होने से असम्भव दोष हो जायेगा। तादृश असम्भव दोष निवारण हेतु साध्य पद का उपादान (लक्षण में निवेश) किया गया है। यहाँ पर किसी टीकाकार ने लिखा है कि संसार के अनादि होने के कारण वह्निसाध्यक धूमहेतुकस्थल में ही घटाभाव का प्रतियोगि समानाधिकरणत्व-प्रतियोगिव्यधिकरणत्व स्वरूप विरुद्धधर्माध्यास हो सकता है। अतः उक्त स्थल में विरुद्ध तादृश धर्माध्यास होने के कारण अधिकरण के भेद से अभाव का भेद स्वीकार किया जायेगा। अतः वह्निमद्भिन्न जलादिवृत्ति वह्न्यभाव के अधिकरण जल में विद्यमान घटाभाव का अधिकरण जल ही होगा धूमवत् पर्वत नहीं होगा। अतः उक्त स्थल में असम्भव की आपत्ति नहीं होगी, इसलिए **"यद्वा"** कल्प से मथुरानाथ वागीश जी साध्यपद की सार्थकता को दर्शित करते हुए कहते है।

माथुरी

यद्वा घटाकाशसंयोगघटत्वान्यतराभावाभावोऽतिरिक्त एव, घटाकाशसंयोगादीनामननुगततया तथात्वस्य वक्तुमशक्यत्वात्। घटत्वद्रव्यत्वाद्यभावाभावस्तु नातिरिक्तो घटत्वद्रव्यत्वादीनामप्यनुगतत्वात्, तथाच द्रव्यत्वादिकमादायासम्भववारणायैव साध्यपदमिति प्राहुरित्यास्तां विस्तरः।

कहीं पर अभाव के अभाव को अतिरिक्त स्वीकार किया जाता है तथा कही अभाव के अभाव को अतिरिक्त नहीं स्वीकार किया जाता है। यहाँ पर युक्ति प्रदर्शित करते हुए घटाकाशसंयोग-घटत्वान्यतराभाव साध्यक स्थल में अव्याप्ति को वारित करते हुए कहते हैं कि घटाकाशसंयोग-घटत्वान्यतराभाव का अभाव भाव स्वरूप न होकर अभाव स्वरूप यानी सप्तम अभाव स्वरूप होता है। क्योंकि घटाकाशसंयोग एक नहीं हो सकता है अनुगत न होने के कारण। यहाँ पर श्याम सुन्दर शर्मा जी कहते हैं कि घटाकाशसंयोग- घटत्वान्यतराभाव का अभाव, घटाकाशसंयोग रूप प्रतियोगी स्वरूप नही हो सकता है। क्योंकि घटाकाशसंयोग प्रति व्यक्ति के भिन्न होने से अनुगत नहीं है इसलिए तादृश अन्यतराभाव का अभाव घटाकाशसंयोग स्वरूप न होकर अतिरिक्त सप्तम अभाव स्वरूप ही होता है। घटाकाशसंयोग के एक न होने से घटाकाशसंयोग को अनुगत करना असम्भव हो जायेगा। अतः घटाकाशसंयोग-घटत्वान्यतराभाव के अभाव को अतिरिक्त स्वीकार करना ही होगा। तादृश अन्यतराभाव साध्यक गगनत्व हेतुक स्थल में अव्याप्ति नहीं होगी। क्योंकि अभावरूप अभाव के अधिकरण के भेद से भिन्न स्वीकार करने पर घटाकाशसंयोग-घटत्वान्यतराभावरूप जो साध्य तदधिकरणाभिन्न घट में वर्तमान घटाकाशसंयोग घटत्वान्यतराभाव के अभाव की अधिकरणता के घट में रहने से अव्याप्ति का वारण सम्भव होगा। प्रति व्यक्ति के भेद से प्रतियोगी जहाँ पर अनुगत नहीं होती है वहीं पर अभाव का अभाव अतिरिक्त होता है सभी जगह अभाव का अभाव अतिरिक्त नहीं होता है। घटत्वाभाव का अभाव घटत्वस्वरूप होता है द्रव्यत्वाभाव का अभाव द्रव्यत्वस्वरूप होता है। क्योंकि द्रव्यत्वाभाव का प्रतियोगी द्रव्यत्व अनुगत

है घटत्वाभाव का प्रतियोगी घटत्व अनुगत है एक होने के कारण। वामाचरण महोदय जी कहते हैं घटत्व एवं द्रव्यत्व जातित्वेन एक है इसलिए द्रव्यत्वाभाव घटत्वाभाव का अभाव द्रव्यत्व घटत्व स्वरूप ही होता है अतिरिक्त अभाव स्वरूप नहीं होता है। इसलिए "वह्नि साध्यक धूम हेतुक स्थल में वह्न्यादिमद्भिन्न जलादिवृत्ति जो अभाव तादृश अभावपद से द्रव्यत्वाभावाभावरूप द्रव्यत्व का भी ग्रहण किया जा सकता है। अधिकरण के भेद से अभाव का भेद उक्त स्थल में नहीं स्वीकार किया जा सकता है। इसलिए द्रव्यत्व का अधिकरण जैसे जल है वैसे पर्वत भी हो सकता है तन्निरूपित वृत्तिता के धूमहेतु में होने से असम्भव दोष पुनः आपतित हो जायेगा। अतः लक्षण में साध्यपद का निवेश करना आवश्यक है। साध्य पद का निवेश लक्षण में कर देने से वह्न्यादिमद् भिन्न जलादिवृत्ति जो साध्याभाव तादृश साध्याभाव पद से द्रव्यत्वा भावाभाव का ग्रहण नही कर सकते हैं। अपितु वह्न्यभाव का ही ग्रहण होगा तदधिकरण जल ही होगा। तन्निरूपितवृत्तित्वाभाव के धूम में रहने से असम्भव दोष का वारणसम्भव है। अतः साध्यपद का निवेश लक्षण में करना आवश्यक है। प्रकर्ष सूचित करने के लिए प्राहुः का प्रयोग ग्रन्थकार ने किया है।

।। इति शम् ।।

द्वितीय लक्षण का हिन्दी व्याख्यान सम्पन्न

गुणातीतोऽपीशस्त्रिगुणसचिवस्त्यक्षरमयः
त्रिमूर्तिर्यः स्वर्गस्थितिविलयकर्माणि तनुते।
कृपापारावारः परमगतिरेकस्त्रिजगताम्
नमस्तस्मै कस्मैचिदमितमहिम्ने पुरभिदे॥

–आचार्यः गङ्गेशोपाध्यायः

तृतीयं व्याप्तिलक्षणम्

तृतीयलक्षणहिन्दीव्याख्याकारः

प्रो० विष्णुपदमहापात्रः

साध्यवत्प्रतियोगिकान्योन्याभावासामानाधिकरण्यम्